Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2026 = 8.727
https://www.srjis.com/issues_data/293
Peer Reviewed & Refereed Journal, MAY-JUNE 2026, Vol- 15/95
https://doi.org/10.5281/zenodo.21389778

21वीं सदी में ओशो की शिक्षा की प्रासंगिकता : भारतीय शिक्षा दर्शन के विशेष संदर्भ में

नम्रता मिश्रा (शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र, आई.आई.एम.टी. विश्वविद्यालय, मेरठ)
डॉ. सुधा शर्मा (असिस्टेंट प्रोफेसर, आई.आई.एम.टी. विश्वविद्यालय, मेरठ)

Paper Received On: 20 MAY 2026
Peer Reviewed On: 24 JUNE 2026
Published On: 01 JULY 2026

Abstract

21वीं सदी का युग तीव्र वैज्ञानिक, तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तन का युग है, जिसमें शिक्षा की भूमिका केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रहकर व्यक्तित्व के समग्र विकास, सृजनात्मकता, नैतिकता तथा आत्मबोध के विकास तक विस्तारित हो गई है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जहाँ एक ओर प्रतिस्पर्धा, तनाव एवं यांत्रिकता बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर मानवीय मूल्यों, आत्मिक संतुलन तथा आंतरिक शांति का ह्रास भी देखा जा रहा है। ऐसे संदर्भ में ओशो का शिक्षा–दर्शन अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। ओशो ने शिक्षा को केवल सूचना–संग्रह की प्रक्रिया न मानकर व्यक्ति के संपूर्ण अस्तित्व के विकास की प्रक्रिया के रूप में देखा है। उन्होंने ध्यान, स्वतंत्रता, सृजनात्मकता एवं आत्म–अन्वेषण को शिक्षा का मूल आधार माना है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य 21वीं सदी में ओशो के शिक्षा–दर्शन की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना तथा इसे भारतीय शिक्षा दर्शन के संदर्भ में समझना है। इस अध्ययन में ओशो के प्रमुख शैक्षिक विचारों जैसे ध्यान का महत्व, शिक्षक–शिष्य संबंध, सृजनात्मकता, व्यक्तित्व विकास, तथा समग्र शिक्षा की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, यह भी दर्शाया गया है कि किस प्रकार ओशो का दर्शन वर्तमान भारतीय शिक्षा नीति के सिद्धांतों जैसे समग्र विकास, अनुभवात्मक अधिगम, और मूल्य–आधारित शिक्षा से मेल खाता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ओशो का शिक्षा–दर्शन 21वीं सदी की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है और एक संतुलित, सृजनशील एवं जागरूक समाज के निर्माण में सहायक हो सकता है।

मुख्य शब्दावली: *ओशो, शिक्षा दर्शन, 21वीं सदी, भारतीय शिक्षा, ध्यान, समग्र विकास*

प्रस्तावनाः–

21वीं सदी में शिक्षा का स्वरूप अत्यधिक परिवर्तित हो चुका है। यह युग सूचना–प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था का युग है। इस युग में शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास को सुनिश्चित करना है। तथापि, वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनेक समस्याएँ देखने को मिलती हैं जैसे– परीक्षा–केंद्रित दृष्टिकोण, रचनात्मकता का अभाव, मानसिक तनाव, नैतिक मूल्यों का ह्रास आदि। इन समस्याओं के समाधान हेतु एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो व्यक्ति के आंतरिक एवं बाह्य दोनों विकास को संतुलित रूप से विकसित करे।

इसी संदर्भ में ओशो का शिक्षा–दर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। ओशो ने शिक्षा को व्यक्ति के भीतर छिपी संभावनाओं को उजागर करने का माध्यम माना है। उनके अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना नहीं, बल्कि व्यक्ति को जागरूक बनाना है। उन्होंने कहा कि ''शिक्षा का कार्य व्यक्ति को स्वतंत्र बनाना है, न कि उसे किसी ढाँचे में ढालना'' (Osho, 1972)।[1]

शिक्षा के प्रति इसी व्यापक दृष्टि को विकसित करने के उद्देश्य से ओशो एक ऐसी 'वर्ल्ड एकेडमी' की कल्पना करते हैं, जहाँ समूचे विश्व में ध्यान, कला और रचनात्मक विज्ञान पर आधारित समान शिक्षा व्यवस्था उपलब्ध हो। ओशो द्वारा प्रतिपादित शिक्षा–रूपरेखा अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया जन्म से पहले ही प्रारम्भ हो जानी चाहिए, इसलिए वे अभिभावकों के शिक्षण में जैविक–संवेदनशीलता, ध्यान के अभ्यास तथा सजग जीवन–दृष्टि को महत्त्व देते हैं। बाल्यावस्था की शिक्षा में उन्होंने माता–पिता की भूमिका, अनुकूल वातावरण, टेलीविजन के प्रभाव, निद्रा–शिक्षा, यौन–शिक्षा, शिक्षक, पुस्तकालय, भाषा–विकास तथा बच्चों और शिक्षकों दोनों के लिए ध्यान को आवश्यक माना।

Copyright © 2026, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

किशोरावस्था की शिक्षा के संदर्भ में ओशो ने पीढ़ियों के बीच अंतर, वास्तविक और प्रामाणिक शिक्षा, यौन–शिक्षा, फैशन–बोध, निजता, खेल, रचनात्मकता, अहं के विसर्जन, विनोदप्रियता तथा ध्यान जैसे पक्षों को विशेष महत्व दिया। युवाओं की शिक्षा के लिए उन्होंने उनकी विविध समस्याओं के समाधान से लेकर विज्ञान, कला और धर्म के समन्वित विकास द्वारा उच्चतम समायोजन की स्थिति प्राप्त करने में सहायता को शिक्षा का उद्देश्य माना। इसके अतिरिक्त, ओशो ने वृद्धावस्था की शिक्षा पर भी विचार किया और जीवन के अंतिम चरण में मृत्यु को भी सजगता और उत्सव की भावना के साथ स्वीकार करने की कला को शिक्षा का अंग माना। इस प्रकार, जीवन के प्रत्येक स्तर पर ओशो ने ध्यान को शिक्षा का केंद्रीय और अनिवार्य तत्व स्वीकार किया।

भारतीय शिक्षा दर्शन सदैव से समग्र विकास, आत्म–साक्षात्कार एवं आध्यात्मिक उन्नति पर आधारित रहा है। उपनिषदों, वेदों एवं भारतीय दार्शनिकों ने शिक्षा को आत्मज्ञान की प्रक्रिया माना है। ओशो का दर्शन इसी परंपरा का आधुनिक रूप है, जो आधुनिक समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करता है।

सम्बन्धित साहित्यः–

गौड़, दीप्ति (2017)[2] ने आचार्य रजनीश (ओशो) के शिक्षा दर्शन में बताया कि ओशो ऐसी शिक्षा को सही मानते थे जो व्यक्ति के भीतर फल–फूल सके। वह कहते हैं कि शिक्षण संस्थायें आत्म खोज में सहयोग के केन्द्र होने चाहिए। दार, रईस अहमद (2018)[3] ने अपने शोध में बताया कि राधाकृष्णन एक दार्शनिक, एक महान शिक्षक, एक उत्कृष्ट विद्वान, एक रचनात्मक प्रतिभा, एक महान मानवतावादी, एक अध्यात्मवादी, एक दूरदर्शी व्यक्ति, एक मिशन का व्यक्ति, सिद्धांतों का एक व्यक्ति, एक आदर्शवादी, एक शानदार वक्ता एक मौलिक विचारक, एक प्रख्यात लेखक के साथ–साथ भारत के कार्यकारी प्रमुख भी थे। अध्यापन का पेशा उनका पहला प्यार था और जिन लोगों ने उनके अधीन अध्ययन किया वे आज भी एक शिक्षक के रूप में उनके महान गुणों के प्रति कृ तज्ञतापूर्वक याद करते हैं। दिनकर, पवन सिंह (2019)[4] ने अपने अध्ययन में पाया कि मानवतावादी दर्शन पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया और निष्कर्ष रूप में बताया गया कि डॉ० भीमराव अम्बेडकर एवं डॉ० जाकिर हुसैन का मानवतावादी शिक्षादर्शन राष्ट्रीयता, सामाजिक–आर्थिक असमानता एवं लिंगभेद मिटाने पर आधारित है। भारद्वाज, विजय कुमार (2020)[5] ने अपने शोध में पाया कि ओशो अपने ईश्वर, धर्म, शिक्षा, काम तथा नैतिकता आदि सभी विचारों द्वारा अभी के समय की समस्याओं का सफल समाधान प्रस्तुत करते हैं। ओशो हमेशा उन परिस्थितियों की ओर इंगित करते रहे हैं, जिनमें अराजकता के बीज अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित होते हैं। यादव, निशांत कुमार एवं तेजवानी, शांति (2021)[6] ने पाया कि आचार्य रजनीश का मानना है कि समाज के स्वस्थ्य विकास के लिए भौतिक समृद्धि के साथ ही मानसिक समृद्धि का विकास भी जरूरी है। कौर, अमनदीप (2022)[7] ने अपने शोध में पाया कि कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा इस रूप में होनी चाहिए थी कि मनुष्य अपनी काबलियत, अपनी सृजनात्मक दृष्टि, अपनी सम्पूर्णता को जान सके। ओशो के विचार भी शिक्षा के स्वरूप के बारे में कृष्णमूर्ति से मिलते हैं। ओशो अपने शुरूआती समय से ही ऐसे दार्शनिक रहे हैं जो सदैव विवादास्पद रहे हैं। ओशो भी यही मानते थे कि शिक्षा के क्षेत्र में पूर्ण क्रान्ति की आवश्यकता है। झा, विभाष कुमार (2023)[8] ने अपने अध्ययन में बताया कि ओशो मानते थे कि प्रेम को समझने से पहले सेक्स को समझना आवश्यक है। शर्मा, मीनाक्षी (2023)[9] ने अपने अध्ययन में पाया कि आधुनिक विश्व के दार्शनिकों, विचारकों में आचार्य रजनीश का दर्शन, विचार सवर्था अद्वितीय है। उनके अभिनव चिन्तन ने समस्त विश्व को सहज की आकृष्ट किया। कुमार, कुंदन एवं कुमार गौरव (2024)[10] ने अध्ययन ओशो रजनीश और जे. कृष्णमूर्ति की शैक्षिक दार्शनिकताओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया तथा जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया कि दोनों चिंतकों ने शिक्षा को केवल ज्ञान–प्रेषण की प्रक्रिया न मानकर व्यक्ति के समग्र, स्वतंत्र और रूपांतरणकारी विकास का माध्यम माना। ओशो की शैक्षिक दृष्टि में स्वतंत्रता, सृजनशीलता, आत्म–अभिव्यक्ति और अनुभवात्मक अधिगम को विशेष महत्व दिया गया है।

समस्या कथनः–

प्रस्तुत अध्ययन की समस्या ''21वीं सदी में ओशो की शिक्षा की प्रासंगिकता : भारतीय शिक्षा दर्शन के विशेष संदर्भ में'' है।

अध्ययन के उद्देश्यः–

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नवत् हैं–

1. ओशो के शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना।
2. भारतीय शिक्षा–दर्शन की प्रमुख परंपराओं (गुरुकुल/वैदिक, टैगोर, गांधी, श्री अरविंद) के साथ ओशो के विचारों की तुलना करना।
3. 21वीं सदी की चुनौतियों पर ओशो का विचार–समुच्चय का विश्लेषण करना।

4. अध्ययन की वर्तमान प्रासंगिकता पर दृष्टिपात करना।
5.

अध्ययन का क्षेत्रः–

प्रस्तुत अध्ययन ओशो के उपलब्ध ग्रंथों, व्याख्यानों आदि के शैक्षिक दर्शन तक सीमित है।

शोध विधि का चयनः–

प्रस्तुत शोध कार्य में दार्शनिक विधि, ऐतिहासिक विधि एवं विवेचन विधि का प्रयोग किया गया है।

ओशो का शिक्षा दर्शन :–

दर्शन का मूल उद्देश्य जीवन एवं जगत में निहित सत्य का अनावरण करना है, जबकि शिक्षा का कार्य उस सत्य को समझने और आत्मसात करने की क्षमता का विकास करना है। इस संदर्भ में आचार्य रजनीश (ओशो) का शिक्षा दर्शन विशेष महत्व रखता है, जिन्होंने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम न मानकर उसे 'धार्मिक विज्ञान' के रूप में विकसित किया। उनके विचारों में धर्म, विज्ञान तथा ध्यान का समन्वय प्रमुख है, जो व्यक्ति के समग्र विकास के लिए आवश्यक है। ओशो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि यह व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक चरण–जन्म से पूर्व की चेतना से लेकर मृत्यु तक ध्यान एवं अनुभवात्मक अधिगम के माध्यम से विकसित होना चाहिए (ओशो, 1972; शर्मा, 2018)[11] [12]।

इतिहास में अनेक विचारकों ने जीवन की वास्तविकताओं को तर्क, अनुभव एवं प्रमाण के आधार पर समझाने का प्रयास किया है, जिसे दर्शन कहा जाता है। दर्शन के माध्यम से व्यक्ति समस्याओं के मूल में निहित सत्य को पहचानने में सक्षम होता है, जिससे समाधान का मार्ग प्रशस्त होता है। तथापि, इस सत्य को समझने और उसका व्यावहारिक उपयोग करने की क्षमता शिक्षा के माध्यम से ही विकसित होती है।

दर्शन और शिक्षा के संबंध को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि दर्शन में विचारों एवं सिद्धांतों की प्रधानता होती है, जबकि शिक्षा उन सिद्धांतों को व्यवहार में लागू करने की प्रक्रिया है। इस प्रकार दर्शन को 'साध्य' तथा शिक्षा को 'साधन' के रूप में देखा जा सकता है। यही कारण है कि दार्शनिकों ने सदैव शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों एवं विधियों पर मार्गदर्शन प्रदान किया है, क्योंकि उनके विचार यदि व्यवहार में न उतरें तो वे केवल सैद्धांतिक एवं निष्प्राण बनकर रह जाते हैं (नेलर, 1971; नोडिंग्स, 2016)।[13] ओशो के शिक्षा दर्शन को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. परम्परागत शिक्षा और ओशो का दृष्टिकोण

ऐसे अनेक शिक्षा–दर्शनिकों के मध्य आचार्य रजनीश (ओशो) का व्यक्तित्व विशिष्ट रूप से उभर कर सामने आता है। उनकी वैचारिक प्रणाली में पुस्तक एवं शास्त्रों का स्थान गौण था। ओशो का मानना था कि शास्त्र एवं सिद्धांत व्यक्ति के भीतर पक्षपात उत्पन्न करते हैं, जिससे जीवन और उसकी जटिल समस्याओं के प्रति निष्पक्ष एवं निर्दोष दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाता। अतः उन्होंने पारंपरिक, रूढ़िगत एवं संकीर्ण शैक्षिक व्यवस्थाओं की आलोचना करते हुए एक ऐसे शिक्षा–दर्शन का प्रतिपादन किया, जो स्वतंत्र चिंतन, अनुभव और आत्मबोध पर आधारित हो (ओशो, 1972[14] ; शर्मा, 2018[15])।

2. धर्म और विज्ञान का समन्वय

ओशो ने अपने शिक्षा–दर्शन में धर्म और विज्ञान के समन्वय को अत्यंत आवश्यक माना। उनके अनुसार धर्म और विज्ञान एक–दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। विज्ञान बाह्य जगत के सत्य को उजागर करता है, जबकि धर्म आंतरिक चेतना का अन्वेषण करता है। इस प्रकार, दोनों का समन्वय ही मनुष्य के समग्र विकास का आधार बन सकता है (ओशो, 1972[16]; राव, 2015[17])। उनका उद्देश्य एक ऐसे नए समाज की स्थापना करना था, जो खोखली परंपराओं, संकीर्णताओं और परतंत्रताओं से मुक्त हो तथा जहाँ मनुष्य का विकास भौतिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर समान रूप से हो सके।

3. 'जोरबा–दी बुद्धा' की अवधारणा

ओशो के शिक्षा–दर्शन का एक प्रमुख लक्ष्य एक ऐसे 'नए मनुष्य' का निर्माण करना है, जिसे उन्होंने 'जोरबा–दी बुद्धा' नाम दिया। यह अवधारणा भोग और योग, भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच संतुलन स्थापित करती है। इस 'नए मनुष्य' में एक ओर जीवन के भौतिक सुखों का आनंद लेने की क्षमता होती है, तो दूसरी ओर वह गौतम बुद्ध की भांति ध्यान और मौन के माध्यम से आत्मिक शांति भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, ओशो ने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रखते हुए उसे जीवन जीने की कला के रूप में प्रस्तुत किया (ओशो, 1981[18]; मिश्रा, 2020)।

4. शिक्षा की सम्यकता और वर्तमान व्यवस्था की आलोचना

ओशो ने समकालीन शिक्षा व्यवस्था की आलोचना करते हुए कहा कि यदि मनुष्य में दोष उत्पन्न हो रहे हैं, तो इसका कारण शिक्षा का असंतुलित और अपूर्ण होना है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर संतुलित, नैतिक एवं जागरूक व्यक्तित्व का विकास करना होना चाहिए। इस दृष्टि से उन्होंने 'सम्यक शिक्षा' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें जीवन के प्रत्येक चरण के अनुरूप शिक्षा का विकास आवश्यक माना गया।

5. जीवन–चक्र आधारित शिक्षा का प्रतिपादन

5.1 जन्मपूर्व शिक्षा

आचार्य रजनीश (ओशो) के शिक्षा–दर्शन में जन्मपूर्व शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका मानना था कि शिक्षा का आरंभ केवल जन्म के बाद नहीं, बल्कि गर्भावस्था के समय से ही हो जाना चाहिए। इस स्तर पर माता–पिता, विशेषतः माता की मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्थिति का गहरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। ओशो के अनुसार यदि गर्भावस्था के दौरान माता–पिता ध्यान, शांति, प्रेम और जागरूकता का वातावरण बनाए रखते हैं, तो इसका सकारात्मक प्रभाव शिशु के व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ता है। उन्होंने आधुनिक विज्ञान, विशेष रूप से जैनेटिक इंजीनियरिंग और मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के साथ ध्यान एवं आध्यात्मिक साधना के समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया। इस प्रकार, जन्मपूर्व शिक्षा केवल जैविक विकास तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास की आधारशिला रखती है, जो आगे चलकर संपूर्ण जीवन को प्रभावित करती है (शर्मा, 2018)।[19]

5.2 बाल्यावस्था की शिक्षा

बाल्यावस्था को ओशो ने शिक्षा का सबसे संवेदनशील एवं निर्णायक चरण माना है। इस अवस्था में बालक का व्यक्तित्व अत्यंत ग्रहणशील होता है, अतः उसका विकास परिवार, वातावरण और प्रारंभिक अनुभवों पर निर्भर करता है। ओशो के अनुसार बाल्यावस्था में शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि बालक की प्राकृतिक जिज्ञासा, रचनात्मकता और स्वतंत्र सोच को विकसित करना होना चाहिए। उन्होंने माता–पिता, शिक्षक और परिवेश को बालक के निर्माण में महत्वपूर्ण घटक माना। इसके अतिरिक्त उन्होंने मीडिया (जैसे टेलीविजन), निद्रा शिक्षा, यौन शिक्षा, भाषा विकास तथा पुस्तकालय संस्कृति के महत्व को भी स्वीकार किया। उनका मानना था कि बालक को भय, दमन और अनुशासन के कठोर ढांचे में नहीं, बल्कि प्रेम, स्वतंत्रता और प्रयोगात्मक अधिगम के वातावरण में विकसित किया जाना चाहिए। इस स्तर पर ध्यान को अनिवार्य तत्व के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिससे बालक में एकाग्रता, भावनात्मक संतुलन एवं आत्म–जागरूकता का विकास हो सके (ओशो, 1972)।[20]

5.3 किशोरावस्था की शिक्षा

किशोरावस्था जीवन का वह चरण है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक परिवर्तन से गुजरता है। ओशो ने इस अवस्था को अत्यंत संवेदनशील मानते हुए विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने किशोरों के लिए 'वास्तविक' एवं 'प्रामाणिक' शिक्षा का समर्थन किया, जिसमें केवल पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन के वास्तविक अनुभवों को भी शामिल किया जाए। उन्होंने पीढ़ी–अंतर की समस्या को समझने और उसे कम करने के लिए संवादात्मक एवं संवेदनशील शिक्षा की आवश्यकता बताई। इसके साथ ही उन्होंने यौन शिक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, खेलकूद, रचनात्मक अभिव्यक्ति, हास्यवृत्ति तथा अहंकार के विसर्जन को इस अवस्था के महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में स्वीकार किया।

ओशो के अनुसार ध्यान इस अवस्था में अत्यधिक आवश्यक है, क्योंकि यह किशोरों को मानसिक संतुलन, आत्मनियंत्रण एवं भावनात्मक परिपक्वता प्रदान करता है। ध्यान के माध्यम से किशोर अपने भीतर की ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में परिवर्तित कर सकते हैं (राव, 2015)।[21]

5.4 युवावस्था की शिक्षा

युवावस्था को ओशो ने जीवन का सबसे सक्रिय एवं निर्णायक चरण माना है, जहाँ व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्य, करियर और सामाजिक भूमिका का निर्धारण करता है। इस अवस्था में शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति को आत्मनिर्भर, जागरूक और सृजनात्मक बनाना होना चाहिए। ओशो ने विज्ञान, कला और धर्म के समन्वय के माध्यम से 'उच्चतम समायोजन' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर संतुलन स्थापित कर सकता है। उन्होंने युवाओं को जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए आंतरिक शक्ति, विवेक और ध्यान की आवश्यकता बताई। इस स्तर पर शिक्षा व्यक्ति को केवल बाह्य सफलता की ओर नहीं, बल्कि आंतरिक संतोष और आत्मबोध की ओर भी प्रेरित करती है। इस प्रकार युवावस्था की शिक्षा व्यक्ति को एक जिम्मेदार, सृजनशील एवं संतुलित नागरिक बनाने में सहायक होती है (मिश्रा, 2020)।[22]

5.5 वृद्धावस्था की शिक्षा

ओशो ने वृद्धावस्था की शिक्षा को भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना, जो पारंपरिक शिक्षा–दर्शन में अक्सर उपेक्षित रही है। उनका मानना था कि शिक्षा जीवन के अंतिम चरण तक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। उन्होंने वृद्धावस्था को आत्मचिंतन, अनुभव के संकलन और आध्यात्मिक विकास का समय माना। इस अवस्था में व्यक्ति को मृत्यु के प्रति भयमुक्त और सजग दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।

ओशो के अनुसार मृत्यु कोई अंत नहीं, बल्कि एक परिवर्तन है, जिसे उत्सव के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उन्होंने ध्यान, मौन और आंतरिक शांति के माध्यम से मृत्यु को 'सजगता का उत्सव' बनाने की शिक्षा दी। इस प्रकार वृद्धावस्था की शिक्षा व्यक्ति को जीवन के अंतिम चरण में भी सार्थकता, शांति और पूर्णता का अनुभव कराती है (ओशो, 1981)।[23]

जीवन–चक्र आधारित शिक्षा की यह अवधारणा ओशो के शिक्षा–दर्शन की एक विशिष्ट विशेषता है, जिसमें शिक्षा को एक सतत, समग्र एवं अनुभवात्मक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण जन्म से पूर्व से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करता है। इस प्रकार, ओशो की शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञानार्जन का माध्यम न होकर, जीवन को पूर्णता के साथ जीने की कला का मार्गदर्शन प्रदान करती है।

6. ध्यान का केंद्रीय स्थान

ओशो के सम्पूर्ण शिक्षा–दर्शन में ध्यान को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। उन्होंने प्रत्येक आयु एवं स्तर पर ध्यान को अनिवार्य माना, क्योंकि उनके अनुसार ध्यान ही वह माध्यम है जो व्यक्ति को आत्मबोध, संतुलन और आंतरिक शांति प्रदान करता है (ओशो, 1972)।[24]

7. 'वर्ल्ड एकेडमी' की अवधारणा

ओशो ने एक ऐसी वैश्विक शिक्षा व्यवस्था की कल्पना की, जिसे उन्होंने 'वर्ल्ड एकेडमी' का नाम दिया। इसका उद्देश्य संपूर्ण विश्व में एक समान शिक्षा प्रणाली विकसित करना था, जिसमें ध्यान, कला और रचनात्मक विज्ञान का समन्वित अध्ययन हो सके। यह शिक्षा व्यवस्था वैश्विक शांति एवं मानवता के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकती है (शर्मा, 2018)।[25]

8. विषयों के प्रति ओशो का दृष्टिकोण

ओशो ने विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, इतिहास, साहित्य, चित्रकला एवं काव्य जैसे विषयों को भी शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने इन विषयों को केवल बौद्धिक विकास का माध्यम न मानकर, रचनात्मकता एवं संवेदनशीलता के विकास का साधन माना (मिश्रा, 2020)।[26]

9. नारी, समाज और शिक्षा

ओशो ने 'नारी की मुक्ति और शक्ति', 'महत्वाकांक्षा का विष' तथा 'शक्ति नियोजन' जैसे विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। उन्होंने 21वीं सदी के लिए एक नए 'धर्म' की कल्पना की, जो स्वतंत्रता, प्रेम और जागरूकता पर आधारित हो (ओशो, 1981)।[27]

10. जीवन की तीन कलाओं पर आधारित शिक्षा

ओशो की शिक्षा–दृष्टि अंततः जीवन से संबंधित तीन प्रमुख कलाओं के विकास पर आधारित प्रतीत होती है–

- जीवन जीने की कलाः भौतिक एवं सामाजिक जीवन का संतुलन।
- प्रेम एवं संबंधों की कला : मानवीय संवेदनाओं का विकास
- ध्यान एवं आत्मबोध की कला : आंतरिक शांति एवं आत्मज्ञान

ये तीनों कलाएँ मिलकर मनुष्य को एक समग्र, संतुलित एवं जागरूक व्यक्तित्व में परिवर्तित करती हैं।

भारतीय शिक्षा दर्शन और ओशो

भारतीय शिक्षा दर्शन की मूल अवधारणा सदैव से आत्म–साक्षात्कार, मुक्ति एवं समग्र विकास पर आधारित रही है। भारतीय चिंतन परंपरा में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं माना गया, बल्कि इसे व्यक्ति के आंतरिक जागरण एवं आत्मबोध का साधन समझा गया है। उपनिषदों में प्रतिपादित सूत्र "सा विद्या या विमुक्तये" स्पष्ट रूप से इस तथ्य को रेखांकित करता है कि वास्तविक शिक्षा वही है जो व्यक्ति को अज्ञान, बंधनों एवं सीमाओं से मुक्त कर सके (राधाकृष्णन, 1953)।[28] इस संदर्भ में मुक्ति का अर्थ केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि मानसिक, सामाजिक एवं बौद्धिक स्वतंत्रता से भी है। यह विचारधारा ओशो के शिक्षा–दर्शन से अत्यंत निकटता

से जुड़ी हुई है, क्योंकि ओशो भी शिक्षा को व्यक्ति की चेतना के विस्तार एवं आंतरिक स्वतंत्रता की प्रक्रिया मानते हैं (ओशो, 1972)।[29]

भारतीय शिक्षा परंपरा में गुरु–शिष्य संबंध का विशेष महत्व रहा है, जिसमें शिक्षा केवल सूचना के आदान–प्रदान तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह जीवन के अनुभवों, मूल्यों एवं व्यवहारिक ज्ञान के संप्रेषण का माध्यम बनती है। गुरुकुल व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास–शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक को सुनिश्चित करना था (शर्मा, 2018)।[30] ओशो ने भी इस परंपरा को आधुनिक दृष्टिकोण से पुनः व्याख्यायित करते हुए शिक्षक को एक 'सहयात्री' या 'मार्गदर्शक' के रूप में प्रस्तुत किया, जो विद्यार्थियों को अपनी आंतरिक क्षमता को पहचानने में सहायता करता है, न कि उन पर ज्ञान थोपता है (ओशो, 1988)।[31] इस प्रकार, ओशो का दृष्टिकोण भारतीय शिक्षा परंपरा के उस मूल भाव को पुनर्स्थापित करता है, जिसमें शिक्षा एक जीवंत, संवादात्मक एवं अनुभवात्मक प्रक्रिया होती है।

महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं स्वामी विवेकानंद जैसे भारतीय शिक्षाविदों ने भी शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास तक सीमित न रखकर उसे समग्र विकास का माध्यम माना। गांधीजी ने 'नैतिकता एवं श्रम आधारित शिक्षा' पर बल दिया, जिसमें शिक्षा जीवनोपयोगी एवं मूल्यपरक हो (गांधी, 1937)।[32] टैगोर ने शिक्षा में प्रकृति, कला एवं स्वतंत्रता को महत्व देते हुए सृजनात्मकता एवं आनंदमय अधिगम की वकालत की (टैगोर, 1917)।[33] वहीं स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को ''मनुष्य में निहित पूर्णता का अभिव्यक्तिकरण'' बताया (विवेकानन्द, 1897/2005)[34]। इन सभी विचारकों की शिक्षादृष्टि में एक समान तत्व यह है कि शिक्षा व्यक्ति के भीतर छिपी संभावनाओं को विकसित करने का माध्यम है।

ओशो ने इन परंपरागत भारतीय विचारों को 21वीं सदी के संदर्भ में पुनः प्रस्तुत करते हुए शिक्षा को स्वतंत्रता, सृजनात्मकता एवं आत्म–अन्वेषण से जोड़ा। उनके अनुसार, वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्ति को एक मशीन की तरह तैयार कर रही है, जबकि वास्तविक शिक्षा उसे एक जागरूक, संवेदनशील एवं सृजनशील व्यक्ति बनाती है (ओशो, 1975)।[35] ओशो ने इस बात पर विशेष बल दिया कि शिक्षा को व्यक्ति की विशिष्टता को विकसित करना चाहिए, न कि उसे एक समान ढाँचे में ढालना चाहिए। यह दृष्टिकोण भारतीय शिक्षा दर्शन की उस मूल अवधारणा के अनुरूप है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अद्वितीय माना गया है और उसके विकास के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता को आवश्यक समझा गया है (अरविन्द, 1990)।[36]

इसके अतिरिक्त, ओशो ने ध्यान को शिक्षा का केंद्रीय तत्व माना, जो भारतीय दर्शन में भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। योग, ध्यान एवं आत्मचिंतन भारतीय शिक्षा परंपरा के अभिन्न अंग रहे हैं, जिनका उद्देश्य व्यक्ति के आंतरिक संतुलन एवं आत्मबोध को विकसित करना है (पतंजलि, ट्रांसलेटेड 2009)।[37] ओशो ने ध्यान को आधुनिक शिक्षा में पुनः स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया, क्योंकि उनके अनुसार ध्यान के माध्यम से ही व्यक्ति तनाव, भ्रम एवं मानसिक अशांति से मुक्त होकर वास्तविक ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकता है (ओशो, 1988)।[38]

इस प्रकार, यह स्पष्ट होता है कि ओशो का शिक्षा–दर्शन भारतीय शिक्षा परंपरा का एक आधुनिक एवं प्रासंगिक स्वरूप है, जो परंपरा एवं आधुनिकता के बीच एक सेतु का कार्य करता है। उन्होंने भारतीय शिक्षा दर्शन के मूल सिद्धांतों जैसे आत्म–साक्षात्कार, समग्र विकास, स्वतंत्रता एवं आंतरिक चेतना को आधुनिक संदर्भ में पुनः व्याख्यायित करते हुए उन्हें 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रस्तुत किया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ओशो का शिक्षा–दर्शन न केवल भारतीय शिक्षा परंपरा की निरंतरता को बनाए रखता है, बल्कि उसे एक नई दिशा भी प्रदान करता है।

21वीं सदी में ओशो की शिक्षा की प्रासंगिकताः–

21वीं सदी में शिक्षा के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं, जहाँ ज्ञान, कौशल और तकनीकी दक्षता के साथ–साथ व्यक्ति के समग्र विकास पर भी विशेष बल दिया जा रहा है। इस संदर्भ में ओशो का शिक्षा–दर्शन अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है, क्योंकि उन्होंने शिक्षा को केवल बौद्धिक प्रशिक्षण तक सीमित न रखकर उसे व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास की समग्र प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। ओशो के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना का संचय नहीं, बल्कि व्यक्ति की चेतना का विस्तार और उसके भीतर छिपी संभावनाओं का विकास करना है। 21वीं सदी में जब शिक्षा प्रणाली अधिकतर परीक्षा–केंद्रित एवं प्रतिस्पर्धात्मक होती जा रही है, तब ओशो का समग्र विकास का दृष्टिकोण इस असंतुलन को दूर करने में सहायक हो सकता है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उस उद्देश्य से भी मेल खाता है, जिसमें विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास संज्ञानात्मक, सामाजिक, नैतिक एवं भावनात्मक पर बल दिया गया है (NCERT, 2020)।[39]

आधुनिक युग में मानसिक स्वास्थ्य एक गंभीर वैश्विक चिंता का विषय बन गया है, विशेषकर विद्यार्थियों के बीच बढ़ते तनाव, अवसाद एवं चिंता के कारण। इस संदर्भ में ओशो द्वारा प्रतिपादित ध्यान की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। ओशो ने ध्यान को शिक्षा का अभिन्न अंग माना और इसे व्यक्ति के आंतरिक संतुलन एवं आत्म–जागरूकता का माध्यम बताया (ओशो, 1988)।[40] उनके अनुसार, ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों एवं भावनाओं को समझ सकता है, जिससे मानसिक शांति और एकाग्रता विकसित होती है। आज जब डिजिटल युग में विद्यार्थियों का ध्यान भंग होना एक सामान्य समस्या बन गई है, तब ध्यान अभ्यास उन्हें एकाग्रता, भावनात्मक संतुलन तथा आत्म–नियंत्रण विकसित करने में सहायता प्रदान कर सकता है (गोलमैन–डेविडसन, 2017)।[41] इस प्रकार, ओशो का ध्यान–आधारित शिक्षा दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा प्रणाली में मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने का एक प्रभावी उपाय प्रस्तुत करता है।

इसके अतिरिक्त, 21वीं सदी को सृजनात्मकता और नवाचार का युग माना जाता है, जहाँ केवल ज्ञान का अर्जन पर्याप्त नहीं, बल्कि नए विचारों का सृजन भी आवश्यक है। ओशो ने शिक्षा में सृजनात्मकता को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया और यह कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात सृजनात्मक क्षमता होती है, जिसे पारंपरिक शिक्षा प्रणाली अक्सर दबा देती है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा को विद्यार्थियों को रचनात्मक सोच, कल्पनाशीलता और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने चाहिए। आधुनिक शिक्षाविद् केन रॉबिन्सन (रॉबिन्सन, 2011)[42] भी इसी बात को स्वीकार करते हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली सृजनात्मकता को पर्याप्त महत्व नहीं देती, जिससे विद्यार्थियों की नवाचार क्षमता प्रभावित होती है। इस संदर्भ में ओशो का दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह शिक्षा को एक सृजनात्मक एवं जीवंत प्रक्रिया के रूप में पुनर्परिभाषित करता है।

ओशो के शिक्षा–दर्शन का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू स्वतंत्रता एवं आत्म–अभिव्यक्ति है। उनके अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को स्वतंत्र बनाना है, ताकि वह अपनी मौलिकता को विकसित कर सके और जीवन के प्रति स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सके। 21वीं सदी में जब नवाचार, उद्यमिता और आलोचनात्मक चिंतन को बढ़ावा दिया जा रहा है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यार्थियों को स्वतंत्र सोचने एवं अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर मिले। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में अक्सर अनुशासन के नाम पर स्वतंत्रता को सीमित कर दिया जाता है, जिससे विद्यार्थियों की रचनात्मकता एवं आत्मविश्वास प्रभावित होता है। ओशो का दृष्टिकोण इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है, क्योंकि वह शिक्षा को एक मुक्त एवं अन्वेषणात्मक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जिसमें विद्यार्थी स्वयं अपने ज्ञान का निर्माण करता हैं

अंततः, ओशो ने शिक्षक की भूमिका को भी पुनर्परिभाषित किया है। उन्होंने शिक्षक को केवल ज्ञान देने वाला नहीं, बल्कि एक मार्गदर्शक, प्रेरक एवं सहयात्री के रूप में देखा, जो विद्यार्थियों की आंतरिक यात्रा में सहयोग करता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी शिक्षक की भूमिका में परिवर्तन देखा जा रहा है, जहाँ वह 'फैसिलिटेटर' के रूप में कार्य करता है और विद्यार्थियों को स्वयं सीखने के लिए प्रेरित करता है। यह दृष्टिकोण रचनात्मक अधिगम के सिद्धांतों से भी मेल खाता है, जिसमें ज्ञान का निर्माण विद्यार्थी स्वयं करता है (व्योगोत्सकी, 1978)।[43] ओशो के अनुसार, एक सच्चा शिक्षक वही है जो विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने, खोज करने और स्वयं अनुभव करने के लिए प्रेरित करे। इस प्रकार, ओशो का शिक्षक–दर्शन 21वीं सदी की शिक्षण–प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, संवेदनशील एवं विद्यार्थी–केंद्रित बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि ओशो की शिक्षा संबंधी विचारधारा 21वीं सदी की शिक्षा प्रणाली के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। उनका समग्र विकास, ध्यान, सृजनात्मकता, स्वतंत्रता एवं शिक्षक की भूमिका संबंधी दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है और एक संतुलित, सृजनशील एवं जागरूक समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में ओशो की प्रासंगिकता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समग्र विकास, अनुभवात्मक अधिगम, और मूल्य–आधारित शिक्षा पर जोर दिया गया है। ये सभी तत्व ओशो के शिक्षा–दर्शन में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विद्यार्थियों की सृजनात्मकता, आलोचनात्मक सोच एवं नैतिक मूल्यों के विकास पर बल दिया गया है। यह ओशो के विचारों से पूर्णतः मेल खाता है। इस प्रकार, ओशो का शिक्षा–दर्शन आधुनिक भारतीय शिक्षा नीति के लिए एक प्रेरणास्रोत के रूप में कार्य कर सकता है।

निष्कर्षः–

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ओशो का शिक्षा–दर्शन 21वीं सदी में अत्यंत प्रासंगिक है। उन्होंने शिक्षा को एक समग्र प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास पर समान रूप से ध्यान दिया गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याओं जैसे तनाव, प्रतिस्पर्धा एवं रचनात्मकता

का अभाव का समाधान ओशो के विचारों में निहित है। भारतीय शिक्षा दर्शन के संदर्भ में भी ओशो का दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह परंपरा एवं आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करता है। अतः यह आवश्यक है कि ओशो के शिक्षा–दर्शन को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित किया जाए, ताकि एक संतुलित, सृजनशील एवं जागरूक समाज का निर्माण किया जा सके।

संदर्भ सूचीः–

1 Osho. (1972). The book of secrets. Rajneesh Foundation.

2 गौड़, दीप्ति (2017). आचार्य रजनीश (ओशो) का शिक्षा दर्शन. Review of Literature. 5(2), 1-2. https://oldrol.lbp.world/UploadArticle/391.pdf

3 Dar, Rayees Ahmad (2018), "Educational Thought Of Dr. Radha Krishnan", International Journal of Advanced Multidisciplinary Scientific Research(IJAMSR), 1(7), 41-56. https://www.researchgate.net/publication/328068251_Educational_Thought_Of_Dr_Radha_Krishnan

4 दिनकर, पवन सिंह (2019). ''डॉ० जाकिर हुसैन एवं डॉ० भीमराव अम्बेडकर के मानवतावादी शिक्षादर्शन का तुलनात्मक अध्ययन''. शोध प्रबन्ध (शिक्षा संकाय), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ। Retrieved from : https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/293413

5 भारद्वाज, विजय कुमार (2020). ''ओशो के दर्शन में ईश्वर की अवधारणा :एक समीक्षात्मक अध्ययन''. पी–एच0डी0 शोध प्रबन्ध (दर्शनशास्त्र). बाबा साहेब अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर। https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/433796

6 यादव, निशांत कुमार एवं तेजवानी, शांति (2021). आचार्य रजनीश के शैक्षिक विचारों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 9(7), p. 489.

7 कौर, अमनदीप (2022). ''शिक्षा के स्वरूप का दार्शनिक विश्लेषण (जे. कृष्णमूर्ति और ओशो के विशेष संदर्भ में)''. पी–एच0डी0 शोध प्रबन्ध (दर्शनशास्त्र). कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र। https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/487568

8 झा, विभाष कुमार (2023). एक संचारक के रूप में ओशो की प्रासंगिकता. अमोघवार्ता. 03(03), 224–228 https://www.amoghvarta.com/uploads/current_issue/1692705331k-Sancharak-ke-Roop-mai-Osho-ki-Prasangita.pdf

9 शर्मा, मीनाक्षी (2023). ''आचार्य श्री रजनीश के शैक्षिक विचारों का अध्ययन''. पी–एच0डी0 शोध प्रबन्ध (दर्शनशास्त्र). संगम विश्वविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान। https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/542954

10 Kumar, K., & Gaurav, K. (2024). A comparative analysis of Osho Rajneesh and J. Krishnamurti's educational philosophies: Approaches to transformative learning. International Journal for Innovative Research in Multidisciplinary Field, 10(12), 39–42. https://doi.org/10.2015/IJIRMF/202412006

11 Osho. (1972). The book of secrets. Rajneesh Foundation.

12 शर्मा, आर. (2018). भारतीय शिक्षा दर्शन. नई दिल्ली : एपीएच पब्लिशिंग।

13 Noddings, N. (2013). Education and democracy in the 21st century. Teachers College Press.

14 Osho. (1972). The book of secrets. Rajneesh Foundation.

15 शर्मा, आर. (2018). भारतीय शिक्षा दर्शन. नई दिल्ली : एपीएच पब्लिशिंग।

16 Osho. (1972). The book of secrets. Rajneesh Foundation.

17 Rao, P. (2015). Philosophical foundations of modern education. APH Publishing.

18 ओशो. (1981). धम्मपद : बुद्ध का मार्ग (खंड 1–10). पुणे : ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन।

19 शर्मा, आर. (2018). भारतीय शिक्षा दर्शन. नई दिल्ली : एपीएच पब्लिशिंग।

20 Osho. (1972). The book of secrets. Rajneesh Foundation.

21 Rao, P. (2015). Philosophical foundations of modern education. APH Publishing.

22 Mishra, R. (2020). Osho's philosophy of education and its relevance. Concept Publishing.
23 Osho. (1981). The book of wisdom. Rajneesh Foundation.
24 Osho. (1972). The new alchemy: To turn you on. Rebel Publishing.
25 Sharma, R. (2018). Osho and modern education. Concept Publishing.
26 Mishra, R. (2020). Osho's philosophy of education and its relevance. Concept Publishing.
27 Osho. (1981). The book of wisdom. Rajneesh Foundation.
28 Radhakrishnan, S. (1953). The principal Upanishads. Harper & Brothers.
29 Osho. (1972). The book of secrets. Rajneesh Foundation.
30 Sharma, R. (2018). Osho and modern education. Concept Publishing.
31 Osho. (1988). Education and the significance of life. Osho International Foundation.
32 Gandhi, M. K. (1937). Basic education (Nai Talim). Navajivan Publishing House.
33 Tagore, R. (1917). Personality. Macmillan.
34 Vivekananda, S. (2005). Complete works of Swami Vivekananda (Vol. 4). Advaita Ashrama. (Original work published 1897)
35 ओशो. (1975). शिक्षा पर विचार. पुणे : रजनीश फाउंडेशन।
36 Aurobindo, S. (1990). The human cycle. Sri Aurobindo Ashram.
37 Patanjali. (2009). The yoga sutras of Patanjali (S. Taimni, Trans.). Theosophical Publishing House.
38 Osho. (1988). Education and the significance of life. Osho International Foundation.
39 NCERT. (2020). National education policy 2020. Government of India.
40 Osho. (1988). Education and the significance of life. Osho International Foundation.
41 Goleman, D., & Davidson, R. J. (2017). Altered traits: Science reveals how meditation changes your mind, brain, and body. Avery.
42 Robinson, K. (2011). Out of our minds: Learning to be creative. Wiley.
43 Vygotsky, L. S. (1978). Mind in society: The development of higher psychological processes. Harvard University Press.